शिक्षा-नीति में भाषा का प्रश्न और हिंदी

डॉ. बिमलेंदु तीर्थंकर

किसी भी राष्ट्र की बुनियाद उसकी शिक्षा होती है। अतः शिक्षा की बुनियाद जितनी सुसंस्कृत और समुन्नत होगी, वह राष्ट्र भी उतना ही मज़बूत होगा। इसलिए किसी भी सरकार का यह नैतिक और प्रारम्भिक कर्तव्य है कि वह एक समुन्नत शिक्षा-नीति का आधार विकसित करे। भारतवर्ष में भी आज़ादी के बाद इस क्षेत्र में कई प्रयास किए गए और समय-समय पर सरकारों द्वारा शिक्षा-नीति बनाई जाती रही। इस कड़ी में सबसे ताजा प्रयास 2020 की शिक्षा नीति है। यह शिक्षा नीति कई मायनों में महत्त्वपूर्ण है। शिक्षा के क्षेत्र में इससे आमूल-चूल परिवर्तन की संभावनाएँ बताई जा रही हैं। इस शिक्षा नीति के प्रस्तावकों द्वारा यह कहा भी जा रहा है कि 'यह राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, 21वीं शताब्दी की पहली शिक्षा नीति है, जिसका लक्ष्य हमारे देश के विकास के लिए अनिवार्य आवश्यकताओं को पूरा करना है। यह नीति भारत की परंपरा और सांस्कृतिक मूल्यों के आधार को बरकरार रखते हुए 21वीं सदी की शिक्षा के लिए आकांक्षात्मक लक्ष्यों, जिनमें एसडीजी-4 शामिल है, के संयोजन में शिक्षा व्यवस्था उसके नियमन और गवर्नेंस सहित, सभी पक्षों के सुधार और पुनर्गठन का प्रस्ताव रखती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति प्रत्येक व्यक्ति में निहित रचनात्मक क्षमताओं के विकास पर विशेष जोर देती है। यह नीति इस सिद्धांत पर आधारित है कि शिक्षा से न केवल साक्षरता और संख्याज्ञान जैसी 'बुनियादी क्षमताओं का विकास होना चाहिए, बल्कि नैतिक, सामाजिक और भावनात्मक स्तर पर भी व्यक्ति का विकास होना आवश्यक है।[1] अब तो यह आने वाला समय बताएगा कि इस शिक्षा नीति से कितना परिवर्तन हुआ या फिर व्यावहारिक स्तर पर इसका हश्र भी दूसरी शिक्षा नीतियों की तरह ही हुआ। अभी तो हम इसकी संभावनाओं और शंकाओं पर ही व्यावहारिक तौर पर बात कर सकते हैं।

किसी भी राष्ट्र और उसकी शिक्षा-नीति में भाषा का सवाल अत्यंत महत्त्वपूर्ण होता है। भाषा ही एकमात्र वह माध्यम है, जिसको आधार बनाकर शिक्षा लोगों या बच्चों तक पहुँचती है या भविष्य में भी पहुँचेगी। दुनिया चाहे कितनी भी बदल जाए, इस बदली हुई दुनिया और तकनीकि का ज्ञान भाषा ही कराएगी। इसलिए भाषा को छोड़कर किसी भी शिक्षा और उसकी नीति की बात नहीं की जा सकती। 2020 की शिक्षा नीति के विविध आयाम हैं। इन विविध आयामों की चर्चा एक साथ संभव नहीं है। यहाँ पर सिर्फ इस नीति में भाषा-संबंधित जो चर्चा है, उसी का उल्लेख किया जाएगा।

नई शिक्षा नीति में विद्यालयों से 10+2 की व्यवस्था खत्म कर, अब 5+3+3+4 फॉर्मेट को लागू किया गया है। विदित हो कि इस महत्त्वाकांक्षी शिक्षा नीति को 2030 तक पूरी तरह से लागू करने की सिफारिश है। अभी तक सरकारी स्कूल पहली कक्षा से शुरू होते थे। स्कूली पाठ्यक्रम को दो भागों में बाँटा जाता था–प्राथमिक शिक्षा और माध्यमिक शिक्षा। इसके बाद महाविद्यालय या विश्वविद्यालय स्तर पर उच्चतर शिक्षा की व्यवस्था है। इस प्रकार पहले, मोटे तौर पर शिक्षा के तीन स्तर थे–प्राथमिक, माध्यमिक और उच्चतर शिक्षा। परंतु अब नए फॉर्मेट में यह पाँच स्तरों पर होगी। पहले स्तर पर बच्चे को पाँच साल के फाउंडेशन स्टेज से गुजरना होगा, जिसमें प्री-प्राइमरी स्कूल के तीन साल और कक्षा एक तथा कक्षा दो शामिल हैं। कहने का तात्पर्य यह कि इस फाउंडेशन स्टेज में कक्षा एक में आने से पूर्व, तीन वर्ष बच्चों को स्कूल स्तर पर विधिवत शिक्षा के लिए तैयार किया जाएगा। ऊपर से देखने पर यह पद्धति अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में चलने वाली माउंटेसरी शिक्षा पद्धति जैसी ही है। माउंटेसरी शिक्षा पद्धति में भी कक्षा एक से पूर्व नर्सरी, एल.के.जी., यू.के.जी. के नाम से बच्चों को तीन वर्ष आधारभूत विकास में दिए जाते हैं। परंतु इन दोनों पद्धतियों में मूलभूत अंतर है। सबसे बड़ा अंतर तो दोनों पद्धतियों में भाषाई प्रतिबद्धता को लेकर है। माउंटेसरी शिक्षा व्यवस्था में पढ़ाई का माध्यम अंग्रेजी है। प्राथमिक स्तर पर सारा जोर बच्चों को अंग्रेजी सिखलाने पर होता है। एक विदेशी भाषा होने के कारण अंग्रेजी सीखने में बच्चों को काफी परेशानी होती है। वह भाषा समझते नहीं हैं। सीखने के नाम पर उसे रटने लगते हैं और एक रटन्त विद्या की शुरुआत हो जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि बच्चों का क्रियात्मक विकास अवरुद्ध हो जाता है। 15 अगस्त, 1947 को, जब सारा देश आजादी का जश्न मना रहा था, गांधीजी ने बी.बी.सी. को इंटरव्यू दिया, जो कई दृष्टियों से काफी महत्त्वपूर्ण है। उस इंटरव्यू में आजाद हिंदुस्तान की भाषा

और शिक्षा पर भी गांधी ने बात की। गांधी ने कहा-'विभिन्न प्रदेशों में अंग्रेजी बोलने वाले लोग काफी मिल जाते हैं, किंतु उनकी संख्या बहुत ही थोड़ी है और हमेशा थोड़ी ही रहेगी। इसका मुख्य कारण है कि भाषा कठिन है और विदेशी है। साधारण मनुष्य इसे ग्रहण नहीं कर सकता है। इसलिए यह संभव नहीं कि अंग्रेजी के जरिए भारत एक राष्ट्र बन जाय। अतः भारतीयों को भारत की ही कोई भाषा पसंद करनी पड़ेगी। करोड़ों लोगों को अंग्रेजी की शिक्षा देना उन्हें गुलामी में डालने जैसा है। मैकाले ने शिक्षा की जो बुनियाद डाली, वह सचमुच गुलामी की बुनियाद थी।''[2] इस तरह भाषा के माध्यम से गांधी यहाँ तीन उल्लेखनीय बातों पर जोर दे रहे हैं। वे तीन बातें हैं–राष्ट्र निर्माण में भाषा की महत्त्वपूर्ण भूमिका है, अँगरेजी विदेशी पृष्ठभूमि की भाषा होने के कारण भारतीयों के लिए कठिन है तथा हमारे देश में अंग्रेजी माध्यम से दी गई शिक्षा अपने उद्देश्य पूर्ति में समर्थ नहीं है। अपने इसी वक्तव्य में गांधी आगे कहते हैं–''अंग्रेजी भाषा के माध्यम से शिक्षा में कम-से-कम सोलह वर्ष लगते हैं। यदि इन्हीं विषयों की शिक्षा मातृभाषा के माध्यम से दी जाए, तो ज्यादा-से-ज्यादा दस वर्ष लगेंगें। यह राय बहुत से अनुभवी शिक्षकों ने प्रकट की है। हजारों विद्यार्थियों के छह-छह वर्ष बचने का अर्थ यह होता है कि कई हजार वर्ष जनता को मिल गए। विदेशी भाषा द्वारा शिक्षा पाने में दिमाग पर जो बोझ़ पड़ता है, वह असह्य है। यह बोझ हमारे बच्चे उठा तो सकते हैं, लेकिन उसकी कीमत उन्हें चुकानी पड़ती है। वे दूसरा बोझ उठाने के लायक नहीं रह जाते, इससे हमारे स्नातक अधिकतर निकम्मे, कमजोर, निरुत्साहित, रोगी और कोरे नकलची बन जाते हैं। उनमें खोज करने की शक्ति, विचार करने की शक्ति, साहस, धीरज, वीरता, निर्भयता और अन्य गुण बहुत क्षीण हो जाते हैं। इससे हम नई योजनाएँ नहीं बना सकते और यदि बनाते हैं तो उन्हें पूरा नहीं कर पाते। ... अंग्रेजी शिक्षा पाए हुए हम लोग भी इस नुकसान का सही अनुमान नहीं लगा पाते। मुझे विश्वास है कि हमने 50 वर्ष तक मातृभाषा द्वारा शिक्षा पाई होती, इसमें इतने बसु और राय होते कि उन्हें देखकर हमें अचम्भा नहीं होता। जापान ने मातृभाषा द्वारा जन-जाग्रति की है, इसलिए उनके हर काम में नयापन दिखाई देता है। दुनिया जापानियों का काम अचरज भरी आँखों से देख रही है।[3] इस प्रकार गांधी जी मातृभाषा में शिक्षा देने के जबर्दस्त हिमायती थे। इससे यह पता भी चलता है कि गांधी का चिंतन कितना विस्तृत और व्यापक है। वह सिर्फ राजनेता ही नहीं थे, बल्कि वह उस हर सवाल से टकराते हैं, जो राष्ट्र निर्माण और मानव उत्थान के लिए जरूरी है।

दुनिया के लगभग सभी शिक्षाशास्त्री इस बात पर सहमत हैं कि प्राथमिक शिक्षा तो बच्चों को मातृभाषा में ही देनी चाहिए। भाषा के संबंध में हमें अक्सर यह बताया जाता है कि भाषा संप्रेषण का माध्यम है। यह बात बिलकुल ठीक है, पर भाषाएँ सिर्फ संप्रेषण का माध्यम भर ही नहीं होतीं। भाषाएँ अपने परिवेश, परंपरा और संस्कृति की वाहक भी होती हैं। अपनी भाषा से कट जाने का अर्थ होता है–अपने पूरे परिवेश, परंपरा और संस्कृति से कट जाना। अंग्रेजी भाषा का परिवेश और संस्कृति अलग है और भारतीय बच्चों का परिवेश और संस्कृति अलग। अतः प्रायः भारतीय बच्चा जिस परिवेश में रहता है और जिस अंग्रेजी भाषा में वह शिक्षा ग्रहण कर रहा है, उसमें कोई तालमेल नहीं होता। भाषाई क्षमता और बच्चे के परिवेश में एक बेहतर तालमेल न होने के कारण शिक्षा का उन्नत और क्रियात्मक रूप प्रायः देखने को नहीं मिलता। परिणाम यह होता है कि जो भाषा एक बच्चे को उँगली थामकर दुनिया को बेहतर समझा सकती है, वही भाषा बच्चे को भयभीत करने लगती है। शिक्षाविद् कृष्ण कुमार लिखते हैं–''हममें से कई लोग भाषा को संप्रेषण का साधन मानने के इतने ज्यादा आदी हो चुके हैं कि हम, सोचने, महसूस करने और चीजों से जुड़ने के साधन के रूप में भाषा की उपयोगिता को अक्सर भूल जाते हैं। भाषा के उपयोग का यह बड़ा दायरा उन लोगों के लिए बेहद महत्त्वपूर्ण है, जो छोटे बच्चों के साथ काम करना चाहते हैं। शिशु के व्यक्तित्व और उसकी क्षमताओं के विकास को आकार देने में भाषा एक विशेष भूमिका निभाती है। एक सूक्ष्म किंतु मजबूत ताकत की तरह भाषा संसार के प्रत्येक बच्चे के दृष्टिकोण, उसकी रुचियों, क्षमताओं, यहाँ तक कि मूल्यों और मनोवृत्तियों को भी आकार देती है।[4]... इस कड़ी में आगे वे कहते हैं–''दुनिया का हर बच्चा-चाहे उसकी मातृभाषा कोई भी हो-भाषा का इस्तेमाल कुछ उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए करता है। एक बड़ा उद्देश्य है दुनिया को समझना और इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए भाषा एक बढ़िया औजार का काम देती है। जब तक हम बच्चे की निगाह से देखने और बच्चे की जिंदगी में भाषा की भूमिका को समझने में असमर्थ रहते हैं, तब तक हम अध्यापक, माता-पिता या देखरेख करनेवालों के रूप में अपनी भूमिका ठीक से तय नहीं कर सकते।''[5]

सैद्धांतिक स्तर पर 2020 की शिक्षा नीति भाषाई दृष्टि से सही और वैज्ञानिक लग रही है। हालाँकि इस पर आरोप भी लग रहे हैं। आरोप और आशंकाओं की चर्चा थोड़ी बाद में की जाएगी। नई शिक्षा नीति में निचले स्तर या प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा देने की बात कही गई है। मातृभाषा में बच्चे बहुत जल्दी सीखते हैं। पाँचवीं कक्षा तक मातृभाषा में पढ़ाई को अनिवार्य किया गया है। विदेशी भाषाओं की पढ़ाई सेकंडरी स्तर से करने की बात है। सरकार की योजना स्कूली शिक्षा से उच्च-शिक्षा तक भारतीय भाषाओं को शामिल करने की भी है। इसमें इंजीनियरिंग और मेडिकल की पढ़ाई भी शामिल है।

नई शिक्षा नीति में त्रिभाषा फॉर्मूला को अपनाने की बात कही गई है। यह त्रिभाषा फॉर्मूला कोई नई बात नहीं है। संवैधानिक स्तर पर तो स्कूली शिक्षा में यह पहले से ही लागू है। कोठारी कमीशन और 1968 की शिक्षा नीति से लेकर अभी नई शिक्षा नीति तक, त्रिभाषा फॉर्मूला को प्रमुखता से अपनाने की बात कही गई है। इस फॉर्मूला में मातृभाषा, कोई अन्य आधुनिक भारतीय भाषा और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अंग्रेजी या कोई अन्य भाषा की बात की गई है। बच्चे की पहली भाषा मातृभाषा होनी चाहिए। मातृभाषा में ही अधिगम की प्रक्रिया शुरू की जानी चाहिए। दूसरी भाषा के रूप में हिंदी या अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओं के अध्यापन की व्यवस्था है। तीसरी भाषा के रूप में प्रायः विद्यार्थी अंग्रेजी पढ़ते हैं।

इस संदर्भ में नई शिक्षा नीति में जो बातें कही गई हैं, उस पर नज़र डालना आवश्यक है। नई शिक्षा नीति के अनुसार—'यह सर्वविदित है कि छोटे बच्चे अपने घर की भाषा/मातृभाषा में सार्थक अवधारणाओं को अधिक तेजी से सीखते हैं और समझ लेते हैं। घर की भाषा आमतौर पर मातृभाषा या स्थानीय समुदायों द्वारा बोली जाने वाली भाषा है। ... जहाँ तक संभव हो ग्रेड 5 तक, लेकिन बेहतर यह होगा कि यह ग्रेड 8 और उससे आगे तक भी हो, शिक्षा का माध्यम, घर की भाषा/मातृभाषा/स्थानीय भाषा/क्षेत्रीय भाषा होगी। इसके बाद घर/स्थानीय भाषा को जहाँ भी संभव हो, भाषा के रूप में पढ़ाया जाता रहेगा। (अनु. 4.11)"[6]... 'जैसा कि अनुसंधान स्पष्ट रूप से दिखाते हैं कि बच्चे 2 वर्ष और 8 वर्ष की आयु के बीच बहुत जल्दी भाषा सीखते हैं और बहुभाषिकता से इस उम्र के विद्यार्थियों को बहुत अधिक संज्ञानात्मक लाभ होता है, फाउंडेशन स्टेज की शुरुआत और इसके बाद से ही बच्चों को विभिन्न भाषाओं में (लेकिन मातृभाषा पर विशेष जोर देने के साथ) एक्सपोजर दिए जाएँगे। सभी भाषाओं को मनोरंजक और संवादात्मक शैली में पढ़ाया जाएगा, जिसमें बहुत सारी संवादात्मक बातचीत होगी और शुरुआती वर्षों में पढ़ने और बाद में मातृभाषा में लिखने के साथ-ग्रेड 3 और आगे की कक्षाओं में अन्य भाषाओं में पढ़ने और लिखने के लिए कौशल विकसित किए जाएँगे। (अनु. 4.12)"[7]... 'संवैधानिक प्रावधानों, लोगों, क्षेत्रों और संघ की आकांक्षाओं और बहुभाषावाद और राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देने की जरूरत का ध्यान रखते हुए त्रि-भाषा फॉर्मूले को लागू किया जाना जारी रहेगा (अनु. 4.13)"[8]

इन नीतियों और विभिन्न मतों को देखते हुए (सभी इस बात पर सहमत हैं) यह स्पष्ट है कि शिक्षा की शुरुआत मातृभाषा में ही करनी चाहिए। बाद में हमें दूसरी भाषाओं की ओर आना चाहिए। यह बात वर्षों से कही जा रही है और इस शिक्षा-नीति में भी कही गई है। अब यह देखना महत्त्वपूर्ण है कि व्यावहारिक स्तर पर स्थिति क्या है? भारत में मोटे तौर पर दो तरह की शिक्षा-व्यवस्थाएँ समानांतर चल रही हैं।

एक सरकारी विद्यालय और दूसरे पब्लिक स्कूलों के नाम पर चलने वाले प्राइवेट अंग्रेजी माध्यम के विद्यालय। सरकारी विद्यालयों के बारे में काफी हद तक यह धारणा बन गई है, और, ठीक ही बनी है, कि आर्थिक रूप से कमजोर व्यक्ति ही अपने बच्चों को सरकारी विद्यालय में भेजता है। कहने को तो इन विद्यालयों में त्रिभाषा फॉर्मूला कमोबेश लागू है, परंतु उसकी स्थिति अत्यंत दयनीय है। एक तो इन स्कूलों से बच्चों की ड्रॉपआउट (स्कूल छोड़ने) की संख्या बहुत बड़ी है, जिसके विभिन्न कारण हैं। इन विद्यालयों की भाषाई स्थिति भी काफी दयनीय है। हिंदी प्रदेशों में प्रायः मातृभाषा के नाम पर हिंदी ही पढ़ाई जाती है। हिंदी प्रदेश के लोग हिंदी से इतने अनुकूलित हो गए हैं कि उन्हें अपनी मातृभाषा और हिंदी में कोई द्वैत नज़र नहीं आता। परंतु ऊँची कक्षाओं में ज्ञान के दूसरे क्षेत्र में अंग्रेजी का दबदबा होने के कारण, हिंदी पिछड़ती चली जाती है और हिंदी माध्यम के बच्चे पिछड़ने लगते हैं। गैर हिंदी प्रदेशों में, वहाँ की स्थानीय भाषा (जैसे तमिल, तेलगू) के बाद सीधे अंग्रेजी का प्रवेश है। कहने को एक आधुनिक भारतीय भाषा (हिंदी वगैरह) एक पत्र के रूप में पढ़नी होती है, परंतु वह सिर्फ औपचारिकता ही रह जाती है। इस प्रकार हिंदी प्रदेशों का गैर हिंदी प्रदेशों से और गैर हिंदी प्रदेशों का हिंदी प्रदेशों से, जिस प्रकार का सांस्कृतिक मिश्रण होना चाहिए, उसका अभाव दिखता है।

जहाँ तक पब्लिक स्कूलों के नाम पर चलने वाले अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों की बात है, वहाँ पर भी कई स्तर हैं। एक तो बड़े ब्रांड के वे स्कूल हैं, जिनमें उच्चवर्ग के बच्चे पढ़ते हैं, जो लगभग घर और स्कूल दोनों जगह अंग्रेजी बोलते हैं। इनकी स्थिति उस विदेशी फूल की तरह है, जो देशी ज़मीन से खाद, पानी लेकर, देशी ज़मीन को ही हिकारत की नज़र से देखते हैं। इनमें से अधिकतर अभिभावकों और बच्चों का सपना विदेश में जाकर डॉलर या पौण्ड कमाना होता है। अतः उनसे भारतीय समाज की उन्नति का स्वप्न देखना असंभव नहीं तो मुश्किल जरूर लगता है। इन विद्यालयों से इतर अंग्रेजी माध्यम के नाम पर, पूरे भारत वर्ष के विभिन्न शहरों, गली-मोहल्लों में जो विद्यालय चल रहे हैं, भाषाई दृष्टि से उनकी स्थिति अत्यंत भयावह है। अंग्रेजी के नाम पर नर्सरी से ही बच्चों पर अंग्रेजी थोप दी जाती है। चूँकि इन बच्चों का सामाजिक परिवेश अंग्रेजी का नहीं होता, इस कारण उन्हें विभिन्न तरह की परेशानियाँ उठानी पड़ती है। अंग्रेजी के नाम पर इन बच्चों को गलत अंग्रेजी भी पढ़ाई जाती है। इसका कारण यह है कि इन विद्यालयों के पास बड़े ब्रांड के विद्यालयों की तरह साधन नहीं होते। सीमित साधन होने के कारण योग्य शिक्षक नहीं मिल पाते। इन विद्यालयों में अंग्रेजी का शोर इतना है कि हिंदी और भारत की

दूसरी भाषाओं की ओर ध्यान ही नहीं जाता। ऐसे में हिंदी सहित भारतीय भाषाएँ घोर उपेक्षा का शिकार हो रही हैं। ऐसी परिस्थिति में इन बच्चों को न ठीक से हिंदी आती है और न अंग्रेजी। एक तरीके से भाषाई दरिद्रता के शिकार बच्चे हो रहे हैं। कुल मिलाकर विद्यालयों में भाषाई स्तर पर स्थिति चिंताजनक है। ऐसे में नई शिक्षा नीति की पहल (भाषाई स्तर पर), एक जरूरी और सही पहल लग रही है। अब यह तो आनेवाला समय ही बताएगा कि इस शिक्षा नीति की पहल कितनी ज़मीन पर उतरी।

अब भारत की दूसरी क्षेत्रीय भाषाएँ और हिंदी की स्थिति पर थोड़ी चर्चा अनिवार्य है। स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद गांधीजी ने लिखा, 'प्रांतीय भाषाओं को अपना पूर्ण विकास करना है, तो भाषा के आधार पर प्रांतों का पुनर्गठन आवश्यक है। हिंदुस्तानी राष्ट्रभाषा होगी, लेकिन वह प्रांतीय भाषाओं की जगह न लेगी। वह प्रांतों में शिक्षा का माध्यम न होगी-अंग्रेजी शिक्षा का माध्यम हो, इसका तो सवाल ही नहीं है। हिंदुस्तानी का उद्देश्य यह होगा कि वह लोगों को महसूस कराए कि वे भारत के अभिन्न अंग हैं, बाहर के लोग हमें गुजराती, मराठी, तमिल आदि कहकर नहीं जानते हैं। उनके लिए हम सब हिंदुस्तानी हैं। इसलिए हमें सभी विघटनकारी प्रवृत्तियों को दृढ़ता से रोकना चाहिए।''[9] ध्यान रहे कि 'हिंदुस्तानी' से गांधी का तात्पर्य हिंदी है। यहाँ गांधीजी दो महत्त्वपूर्ण बातों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं। एक तो शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो। दूसरा हिंदी राष्ट्रभाषा के रूप में विकसित हो। गांधी जी की इस अपील के कारण, स्वतंत्रता आंदोलन के समय, बहुत सारे गैर हिंदी प्रदेश के लोगों और नेताओं ने हिंदी का समर्थन भी किया। सन् 1937 में गांधीजी के सहयोगी राजगोपालाचारी ने मुख्यमंत्री के रूप में मद्रास प्रांत के स्कूलों में हिंदी की पढ़ाई अनिवार्य कर दी। तब कुछ लोगों द्वारा 'मातृभाषा खतरे में' का नारा देकर विरोध भी किया गया। आज भी लगभग वही हालात हैं। हमें अपनी भाषा से प्यार करना चाहिए, उसके विकास के लिए चिंतित रहना चाहिए, पर भाषाई संकीर्णता और कट्टरता की मनःस्थिति में नहीं जाना चाहिए। हमें मातृभाषा में शिक्षा ग्रहण करते हुए, राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी को पढ़ना और समझना चाहिए। यही भारत की उन्नति का रास्ता हो सकता है। उम्मीद है कि नई शिक्षा नीति का भाषाई दृष्टिकोण, भारत की इस उन्नति में सहायक होगा।

संदर्भ :

1. राष्ट्रीय शिक्षा-नीति 2020, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, पृष्ठ-04
2. मोहनदास कर्मचंद्र गांधी-सं. रवीन्द्र कालिया, भाषा की अस्मिता और हिंदी का वैश्विक संदर्भ, हिंदी अनुभाग, विदेश मंत्रालय भारत सरकार (2012), पृष्ठ-47
3. वहीं, पृष्ठ-48
4. कृष्ण कुमार, बच्चे की भाषा और अध्यापक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, पृष्ठ-01
5. वहीं, पृष्ठ-02
6. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, पृष्ठ-19
7. वहीं, पृष्ठ-20
8. वहीं, पृष्ठ-20
9. महात्मा गांधी-सं. रवीन्द्र कालिया, भाषा की अस्मिता और हिंदी का वैश्विक संदर्भ, हिंदी अनुभाग, विदेश मंत्रालय, भारत-सरकार (2012), पृष्ठ-61

हिंदू कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय,
दिल्ली-7
मो. न. 9873404932
bimlendutirthankar@yahoo.com